THE ECONOMIC TIMES

Date: 30-07-24

ELIgant Signalling, But Job Creator?

Urban unemployment subsidy may be better.

ET Editorials

GoI's plan to subsidise employment of inexperienced workers has theoretical and empirical justification. Subsidising employment of disadvantaged workers provides social security and connects the target group to unsubsidised employment, improving their long-term job prospects. It has been used by governments for decades to provide work experience and income support. There is evidence the earnings benefits of employment subsidies last longer than duration of the programme. The spillover benefits on expansion of small enterprises and support to consumption demand make a compelling argument for this subsidy. In the Indian context, it addresses the skilling gap entry-level workers face as a hurdle to employment.

Objections to the scheme lie not in its design but in the assumptions about job creation. The programme is meant to benefit 1 crore new workers annually. But all these jobs will have to be created in the formal part of the non-farm economy for the subsidy to deliver the expected outcomes. Official estimates set the economy-wide job creation rate at around 2 crore annually. Formal employment makes up around a tenth of the overall employment. This would have a bearing on the outcome of the programme. Besides, the business cycle may not be adequately supportive. Private investment has been sluggish on slowing consumption. This has a direct bearing on job creation. To gain traction, duration of the employment subsidy scheme may have to be extended.

That brings up the question whether more permanent solutions should be sought, given the country's demographics. The public sector has ramped up capacity in line with GoI's capex push. But this has not been particularly employment-generating. An unemployment subsidy for urban workers may have a more direct impact than an employment subsidy of similar scale, which is linked to growth of manufacturing and services, as also to the rate of formalisation of the economy. Subsidy to rural workers is shrinking slower than anticipated, which also established a marker for job creation overall.

Date: 30-07-24

सामान्य कामकाज में सिस्टम पंगु हो जाता है?

संपादकीय

कुछ ताजा घटनाएं देखें। नीट में गड़बड़ी का राष्ट्रीय आयाम, एक आईएएस ट्रेनी द्वारा फर्जीवाड़े के राजफाश के बाद यूपीएससी चेयरमैन का 'निजी कारणों से इस्तीफा, उद्घाटन से पहले पुल का ढहना, ट्रेन हादसा, दशकों तक जेल में रहने के बाद किसी विचाराधीन कैदी का कोर्ट से बरी होना, सरकारी स्कूलों में कक्षा पांच के आधे से ज्यादा बच्चों को कक्षा दो का सामान्य जोड़-घटाना नहीं आना...। लगता नहीं है कि 'स्टेटक्राफ्ट' (शासन चलाना) में सब कुछ सही है। सरकार में लगे लोग अक्षमता, उदासीनता या / और भ्रष्टाचार के कारण अपेक्षित डिलीवरी नहीं दे पा रहे हैं? यह वही तंत्र है जो कोरोना में देश भर को टीका लगाकर एक मिसाल बना था। यानी मिशन मोड में यह कुछ समय तक तो सक्षम होता है, लेकिन नियमित और सामान्य कामकाज में बेहद दोषपूर्ण । शायद इसका कारण हैं कर्मचारी। दुनिया के प्रमुख विकसित ही नहीं विकासशील देशों के मुकाबले प्रति 1000 जनसंख्या पर भारत में मात्र 16 (सबसे कम) कर्मचारी (केंद्र और राज्य मिलकर) हैं। जबकि ब्राजील में 111, चीन में 57 और अमेरिका में 77 हैं। दूसरी तरफ, जहां एक प्राइवेट लो - स्किल जॉब में पगार कम होती है, लेकिन वहीं सरकारी कर्मचारी एचआरए, डीए, वेतन सहित छुट्टियां छोड़कर निजी क्षेत्र से बेहतर कमाता है। सरकारी कर्मचारियों का यह वेतन प्रति व्यक्ति जीडीपी के अनुपात में 7.2 गुना, वहीं ओईसीडी देशों के मुकाबले भी साढ़े चार गुना है। अध्ययनों में पाया गया कि सरकारी स्कूलों के शिक्षक निजी स्कूलों के शिक्षकों से पांच गुना ज्यादा पगार लेते हैं लेकिन निजी शिक्षकों की उपस्थिति ही नहीं, प्रदर्शन भी बेहतर है। स्टेटक्राफ्ट के ढांचे में आज 'सफेद हाथियों' को खड़ा करने के बजाय मेहनती लोगों की ज्यादा जरूरत है।

Date: 30-07-24

क्या राज्य की सरकारें भी विदेश नीति तय कर सकती हैं?

पलकी शर्मा, (मैनेजिंग एडिटर)

भारत की विदेश नीति कौन तय करता है? आप कहेंगे कि नई दिल्ली में बैठी केंद्र सरकार। लेकिन क्या हो अगर राज्य सरकारें भी इसमें कूद पड़ें, और क्या वे ऐसा कर भी सकती हैं? इस सवाल पर अभी बहस हो रही

है और इसका श्रेय पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी को जाता है, जिन्होंने बांग्लादेश में चल रहे विरोध-प्रदर्शन पर टिप्पणी की है। सरकारी नौकरियों में आरक्षण को लेकर बांग्लादेश में हिंसक विरोध-प्रदर्शन चल रहे हैं। इसमें सौ से ज्यादा लोग मारे गए हैं और कई घायल हुए हैं। हिंसा के बीच ममता बनर्जी ने एक प्रस्ताव जारी करते हुए कहा कि अगर बांग्लादेश से शरणार्थी बंगाल में आते हैं, तो वो उन्हें शरण देंगी। लेकिन समस्या यह है कि उन्हें ऐसा प्रस्ताव रखने का अधिकार नहीं है। बांग्लादेश ने भी इसका विरोध किया है। उसने ढाका में भारतीय उच्चायोग में औपचारिक शिकायत भी दर्ज कराई है और नई दिल्ली ने इसकी पुष्टि की है। नई दिल्ली ने यह भी कहा कि संविधान की 7वीं अनुसूची के तहत, विदेशी मामलों का संचालन केवल केंद्र सरकार का ही विशेषाधिकार है। राज्यों का उसमें कोई दखल नहीं है। वे विदेश मंत्रालय को केवल सुझाव भर ही दे सकते हैं।

इसके बावजूद यह हो रहा है, और सिर्फ पश्चिम बंगाल में ही नहीं। केरल में तो वहां की राज्य सरकार ने अपना खुद का एक 'विदेश सचिव' नियुक्त कर रखा है- विदेश में केरल से जुड़े मामलों की देखभाल के लिए। एक बार फिर, केंद्र ने कहा कि राज्य सरकारों को उन मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जो उनके संवैधानिक अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं। यह एक चिंताजनक मसला है। क्योंकि विदेश नीति, कर या शराब कानून की तरह नहीं होती। आप अलग-अलग राज्यों के लिए विदेश नीति सम्बंधी अलग-अलग नियम नहीं बना सकते। इसकी एक ही नीति होनी चाहिए। हमारे संविधान-निर्माताओं ने इस बात को समझा था। वे चाहते थे कि विदेश में पूरा भारत एक स्वर में बोले। यही कारण है कि केवल केंद्र ही विदेश नीति निर्धारित कर सकता है।

कल्पना कीजिए अगर ऐसा नहीं होता तो। क्या होता अगर जम्मू-कश्मीर के पास पाकिस्तान से बातचीत करने के लिए अपनी पृथक विदेश नीति होती? अगर तमिलनाडु के पास श्रीलंका के तमिलों से संपर्क करने की अपनी नीति होती तो? अगर पंजाब के पास खालिस्तानियों से निपटने की अपनी नीति होती तो? और क्या होता अगर अरुणाचल प्रदेश के पास मान्यता के लिए चीन से बातचीत करने की अपनी नीति होती? तब जो अराजकता मचती, क्या आप उसकी कल्पना कर सकते हैं? राष्ट्रीय हित पीछे छूट जाता, क्षेत्रीय हितों का बोलबाला होता। हमारे संविधान-निर्माता इसे रोकना चाहते थे। इसलिए कुछ शक्तियां केवल केंद्र के पास छोड़ी गई हैं, जैसे विदेश नीति और रक्षा। अगर आप इसे कमजोर करते हैं तो एक खतरनाक मिसाल कायम करते हैं। साथ ही, अगर नीतियां एक-दूसरे का खंडन करती हों तो क्या होगा? पश्चिम बंगाल शरणार्थियों का स्वागत कर सकता है, लेकिन असम निश्चित रूप से ऐसा नहीं चाहता। तब क्या वे इससे लड़ने के लिए अपनी सेनाएं भी खड़ी करेंगे? इस तरह के कदम भारत के संघवाद की नींव को कमजोर करते हैं।

सवाल यह है कि इसके बारे में क्या किया जा सकता है? सबसे पहले तो चीजों को दुरुस्त करना होगा। भाजपा ने केरल सरकार के कदम को असंवैधानिक बताया है। देखते हैं कि इसके बाद कोई कानूनी चुनौती आती है या नहीं। अगर ऐसा होता है, तो अदालतें हस्तक्षेप कर सकती हैं और मामले का निराकरण करने की पेशकश कर सकती हैं। दूसरे, हमें संघीय विभाजन को ठीक करने की जरूरत है। और यहां सिर्फ विदेश नीति की बात नहीं

है। पश्चिम बंगाल और सीबीआई के बीच विवाद पर विचार करें। ममता बनर्जी का कहना है कि सीबीआई को उनके खिलाफ हथियार बनाया गया है। 2018 में, उन्होंने अपने राज्य से सीबीआई को बाहर कर दिया था। मामला अब अदालत में है। एक और उदाहरण सीएए का है। संसद ने इसे पारित कर दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने इस पर रोक लगाने से इनकार कर दिया है। फिर भी, कुछ राज्यों ने इसके खिलाफ प्रस्ताव पारित किए हैं। उनका कहना है कि वे सीएए का पालन नहीं करेंगे।

दूसरी तरफ तमिलनाडु में राज्यपाल राज्य सरकार द्वारा पारित विधेयकों पर हस्ताक्षर करने और सरकार द्वारा तैयार भाषणों को पढ़ने से इनकार कर देते हैं और महत्वपूर्ण नियुक्तियों को रोक देते हैं। यह भी संविधान के अनुरूप नहीं है। और ये सभी मामले एक समस्या की ओर इशारा करते हैं- भारत के संघीय ढांचे में तनाव। इसकी कल्पना कई गियर वाली एक मशीन के रूप में करें। देश की तरक्की के लिए उन सभी को एक साथ काम करना चाहिए। संघवाद भारत की ताकत है। लेकिन राजनीतिक दल एकजुट होकर काम नहीं करेंगे, तो यह ताकत एक बाधा बन जाएगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 30-07-24

स्पष्ट रोडमैप की जरूरत

संपादकीय

गत सप्ताह नीति आयोग की संचालन संस्था की नौवीं बैठक के बाद एक 'दृष्टिकोण पत्र' जारी किया गया। इसमें 2047 तक विकसित भारत बनाने को लेकर विजन पेश किया गया है। यह लक्ष्य चर्चा में है और खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी कई बार इसका उल्लेख कर चुके हैं। यह महत्त्वपूर्ण है कि इस बात का आकलन किया जाए कि सरकार का थिंक टैंक इस बारे में क्या सोचता है कि इसे हकीकत में बदलने के लिए क्या कुछ करना होगा। दस्तावेज में काफी आत्मविश्वास नजर आता है और वह इस मान्यता पर आधारित है कि भारत ने 'बदलाव के अपने सफर में कई ऐसे मुकाम हासिल किए जो नजर आते हैं और अब वह उड़ान भरने को तैयार है।' परंतु कई लोगों का तर्क है कि भारत बीते कम से कम दो दशकों से रनवे पर ही खड़ा है और उसकी उड़ान अभी भी कुछ दूर नजर आती है।

संबंधित दस्तावेज में बीते एक दशक के प्रदर्शन की काफी बात की गई है और यह दर्शाया गया है कि भारत ने तेज छलांग लगाने की क्षमताएं दिखाई हैं। इस बात को जन धन खातों में विस्तार, चंद्रयान की उपलब्धि और एशियाई खेलों में पदक तालिका में स्थान तक के संदर्भ में कहा गया है। ये सभी बातें गर्व करने लायक हैं लेकिन ये तथा ऐसे अन्य उदाहरणों का आवश्यक तौर पर यह अर्थ नहीं हो सकता है कि ये आर्थिक विकास

की योजनाओं में भी अनिवार्य तौर पर अपनी भूमिकाएं निभाएं। इसका काफी हिस्सा इस बात की पड़ताल करता है कि विकसित भारत का क्या अर्थ हो सकता है। यह दावा किया गया है कि राष्ट्रीय स्तर पर 15 लाख लोगों के साथ संवाद करके विकसित भारत 2047 के लिए विजन का प्रारूप तैयार किया गया। बहरहाल इसमें कुछ लोकप्रिय मांगें मसलन स्वच्छ पेय जल, सबके लिए कौशल तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को जीवंत बनाना आदि शामिल हैं और इस आधार पर लगता है कि इसके लिए इतनी गहन चर्चा की क्या आवश्यकता थी। 'आंतरिक चुनौतियों' वाला हिस्सा सबसे अधिक प्रासंगिक है। इसमें ऊर्जा क्षेत्र की दिक्कतें दूर करना, ग्रामीण शहरी असमानता और औद्योगिक प्रतिस्पर्धा जैसे विषय शामिल हैं। हालांकि इन पर कैसे काम होगा, ये सुझाव भी प्राप्त करने होंगे।

आखिर में सबसे अहम हैं आर्थिक लक्ष्य। ऐसा इसलिए कि विकसित भारत के अन्य लक्ष्यों को हासिल करने के लिए जरूरी गति वृद्धि से ही हासिल होगी।

पत्र में कहा गया है, 'हमें 2047 तक 30 लाख करोड़ डॉलर की अर्थव्यवस्था बनना है और उस समय तक हम 18,000 डॉलर वार्षिक की प्रतिव्यक्ति आय का लक्ष्य लेकर चल रहे हैं।' हालांकि इसे हकीकत में बदलने के लिए दो अंकों की वृद्धि लगातार बरकरार रखनी होगी। पत्र में ऐसी वृद्धि के उदाहरणों में जापान, जर्मनी, सिंगापुर और कोरिया के साथ चीन का नाम पढ़ना दिलचस्प है। इन देशों ने दशकों तक उच्च वृद्धि हासिल की है और इसे नाटकीय संस्थागत और साामजिक बदलावों से भी मदद मिली है। सिंगापुर ने अपनी अफसरशाही में सुधार किया, कोरिया ने नए तरह की निजी-सार्वजनिक भागीदारी विकसित की, जापान ने अपने सार्वजनिक क्षेत्र में, नियमन और न्यायपालिका में पूरी तरह पश्चिमी उदारवादी मॉडल अपना लिया। चीन में 1970 के दशक के बाद ऐसा ही बदलाव हुआ और संचालन की प्रक्रिया में खुलापन लाया गया, निजी मुनाफे की इजाजत दी गई और निर्णयों का विकेंद्रीकरण किया गया।

भारतीय संस्थानों में ऐसे बदलाव के बिना लगातार उच्च वृद्धि हासिल करना मुश्किल होगा। उदाहरण के लिए हमारे देश के पुराने और सख्त अफसरशाही ढांचे की वजह से निर्णय प्रक्रिया में देरी होती है और विशेषज्ञता या अनुभव को तवज्जो नहीं दी जाती है। स्पष्ट है कि प्रशासनिक सुधार भी काफी समय से लंबित हैं। कई संस्थानों में बदलाव की आवश्यकता है। न्यायिक प्रक्रिया में बहुत समय लगता है, कानून का प्रवर्तन करने में मनमानापन है, तीसरे स्तर की सरकार को पर्याप्त फंडिंग नहीं है और उसके यहां जवाबदेही का अभाव है। महिलाओं को श्रम शक्ति में अधिक भागीदारी देने जैसे सामाजिक बदलावों को लागू करना तब और कठिन हो सकता है। इन सभी के लिए राजनीतिक और सामाजिक सहमति की आवश्यकता होगी। नीति आयोग को उसे हासिल करने पर काम करना चाहिए।

Date: 30-07-24

ओबीएस के निर्यात में अपार संभावनाएं

अजय श्रीवास्तव, (लेखक ग्लोबल ट्रेड रिसर्च इनीशिएटिव के संस्थापक हैं)

वर्ष 2030 तक अन्य कारोबारी सेवाएं (ओबीएस) भारत से निर्यात का अगला बड़ा स्रोत हो सकती हैं। अनुमान लगाया जा रहा है कि ये सॉफ्टवेयर एवं सूचना-प्रौद्योगिकी (आईटी) सेवा क्षेत्र को भी पीछे छोड़ देंगी। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत से सेवा निर्यात में ओबीएस नए असरदार भागीदार के रूप में उभर रही हैं।

ओबीएस खंड में वे सेवाएं आती हैं जो विविध कारोबारी परिचालनों जैसे कारोबार परामर्श, अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) और रिसर्च एवं डिजाइन (आरऐंडडी) से संबंधित होती हैं। इसमें विज्ञापन, जन संपर्क, बाजार शोध, लॉजिस्टिक्स, लेखा, अंकेक्षण (ऑडिट), वास्तुशिल्प एवं विधि सेवाएं सहित कई विधा आती हैं।

वित्त वर्ष 2022-23 में भारत से 150 अरब डॉलर मूल्य (वैश्विक हिस्सेदारी का 20 प्रतिशत) की सॉफ्टवेयर एवं आईटी सेवाओं और 80 अरब डॉलर मूल्य (वैश्विक हिस्सेदारी का 4.2 प्रतिशत) की ओबीएस का निर्यात हुआ। सॉफ्टवेयर एवं आईटी सेवाओं की भारत से सेवाओं के कुल निर्यात में आधी से अधिक हिस्सेदारी रहती है और ओबीएस की लगभग एक चौथाई हिस्सेदारी होती है।

आइए, यह समझने की कोशिश करते हैं कि क्यों ओबीएस में आईटी से भी आगे निकलने की क्षमता है। यद्यपि सॉफ्टवेयर एवं आईटी भारत से निर्यात के सबसे बड़े स्रोत हैं मगर ओबीएस का व्यापार भी तेजी से बढ़ रहा है। वैश्विक स्तर पर सेवाओं का निर्यात लगभग 7.1 लाख करोड़ डॉलर रहा। इनमें ओबीएस का निर्यात 1.8 लाख करोड़ डॉलर (25.4 प्रतिशत) और सॉफ्टवेयर एवं आईटी का 762 अरब डॉलर (10.7 प्रतिशत) रहा।

आने वाले वर्षों में आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) और केवल एक देश पर निर्यात संबंधी निर्भरता के कारण सॉफ्टवेयर एवं आईटी क्षेत्र की वृद्धि नरम पड़ सकती है। भारत आईटी निर्यात से जो कमाई करता है, उसमें अमेरिका की हिस्सेदारी 70 प्रतिशत से अधिक होती है। कुछ रणनीतिक कदमों से आने वाले वर्षों में भारत से ओबीएस निर्यात सॉफ्टवेयर एवं आईटी की तुलना में तेज गति से आगे बढ़ सकता है।

ओबीएस का बढ़ रहा वैश्विक व्यापार

विशेष सेवाओं की बढ़ती मांग, सेवाओं का विनिर्माण से जुड़ाव और तकनीक में प्रगति ओबीएस की वृद्धि को बढ़ावा दे रहे हैं। बड़ी विनिर्माण कंपनियां लागत कम करने के लिए संरचना, विकास एवं उत्पादन कार्य अलग-अलग जगहों पर ले जा रहे हैं। इस कदम के बाद अभियांत्रिकी, आईटी, लॉजिस्टिक्स एवं आरऐंडडी की मांग बढ़ रही है।

सेवाओं का विनिर्माण में यह जुड़ाव विनिर्माण के 'सेवाकरण' या सर्विसिफिकेशन के नाम से जाना जाता है, जो ओबीएस को बढ़ावा दे रहा है। उदाहरण के लिए कार बनाने वाली कोई अमेरिकी कंपनी इंजन बनाने का जिम्मा भारत में किसी इंजीनियरिंग कंपनी को दे रही है। यह 'सर्विसिफिकेशन' के रुझान को दर्शा रहा है।

इसके अलावा विदेश में कारोबार विस्तार करने वाली कंपनियों को नए बाजारों में अधिक सेवाओं की आवश्यकता होती है। तेजी से उभरती अर्थव्यवस्थाओं में तेज वृद्धि भी इंजीनियरिंग, विज्ञापन और आरऐंडडी सेवाओं की मांग बढ़ाती हैं। तकनीक में प्रगति जैसे क्लाउड कंप्यूटिंग, दूर बैठे काम करने की तकनीक और डिजिटल प्लेटफॉर्म दुनिया भर में अधिक सेवाएं पहुंचा रही है, जिससे उनका व्यापार तेजी से बढ़ रहा है।

विभिन्न क्षेत्रों में डिजिटल माध्यम के अधिक इस्तेमाल से तकनीकी एवं इंजीनियरिंग सेवाओं की मांग और तेजी से बढ़ रही है। यूरोप की किसी दवा कंपनी द्वारा भारत में आरऐंडडी केंद्र के लिए रकम मुहैया कराना या किसी भारतीय एजेंसी द्वारा किसी कोरियाई इलेक्ट्रॉनिक्स कंपनी के लिए मार्केटिंग अभियान चलाना इन गतिविधियों का उदाहरण हो सकता है।

कम से कम लागत में ज्यादा से ज्यादा काम होना भी एक अन्य कारक है। कंपनियां इंजीनियरिंग, आरऐंडडी और विज्ञापन जैसे कार्य भारत जैसे कम खर्चीले स्थानों से कराती हैं। इससे इन कंपनियों को प्रमुख कार्यों पर ध्यान केंद्रित करने में मदद मिलती है और विशेष सेवाओं के लिए दूसरे देशों की विशेषज्ञता पर निर्भर रहती हैं।

इसके अलावा नियामकीय दबावों के कारण व्यवसायों को अंतरराष्ट्रीय नियमों के अनुपालन के लिए परामर्श सेवाओं की आवश्यकता महसूस हो रही है। इन सभी कारणों से दुनिया भर में ओबीएस का वैश्विक व्यापार तेजी से बढ़ रहा है। भारत को इस रुझान से लाभान्वित होने का पूरा हक है।

भारत के ओबीएस निर्यात की ताकत कौन?

भारत से 80 अरब डॉलर मूल्य के ओबीएस का निर्यात होता है, जिनमें आधा वैश्विक क्षमता केंद्रों (जीसीसी) से और शेष हिस्सा विभिन्न आकार की कंपनियों एवं परामर्श इकाइयों से आता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों (एमएनसी) द्वारा स्थापित जीसीसी आईटी सेवाएं, वित्त, मानव संसाधन, आरऐंडडी और विभिन्न बैक-ऑफिस (प्रशासन एवं सहायता कर्मियों वाला विभाग जो सीधे ग्राहकों से संवाद नहीं करते हैं) परिचालन आदि कार्य संभालते हैं।

भारत में लगभग 1,500 जीसीसी हैं, जो बेंगलूरु, हैदराबाद, पुणे, चेन्नई, मुंबई, गुरुग्राम और नोएडा में हैं। माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, आईबीएम, जीई, वॉलमार्ट, जेपी मॉर्गन, गोल्डमैन सैक्स, एचएसबीसी, सीमेंस और इंटेल जैसी कंपनियां ये जीसीसी स्थापित करती हैं। जीसीसी बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग (बीपीओ) और नॉलेज प्रोसेस आउटसोर्सिंग (केपीओ) के विकास का अगला चरण हैं।

बीपीओ और केपीओ ने कई ग्राहकों को अपनी सेवाएं दीं मगर बड़ी एमएनसी अब धीरे-धीरे अपने जीसीसी लगाकर यह काम खुद करने लगी हैं। इससे इन कंपनियों को रकम बचाने और डेटा सुरक्षा से जुड़े मसलों से बेहतर तरीके से निपटने में मदद मिलती है। जीसीसी ने भारतीय आईटी कंपनियों से कुछ कारोबार छीन लिए हैं। जीसीसी के बाहर ओबीएस निर्यात में मुख्यतः स्थानीय कंपनियों का योगदान होता है।

कई छोटी नई कंपनियां और बड़ी सलाहकार इकाइयां लेखा एवं कर, विधि सेवा, प्रबंधन सलाह, विपणन एवं विज्ञापन सेवा, वास्तुशिल्प सेवा एवं लॉजिस्टिक्स सेवा जैसे क्षेत्रों में विशिष्ट सेवाएं देती हैं। ये कंपनियां अपनी सेवाएं पहुंचाने के लिए सीधे ग्राहकों के साथ या मध्यस्थों के साथ मिलकर काम करती हैं।

कुछ भारतीय कंपनियां इंजीनियरिंग, निर्माण और आईटी विकास में परियोजना के आधार पर काम कर अंतरराष्ट्रीय परियोजनाएं हासिल कर लेती हैं। वे दुनिया भर में अपनी सेवाएं देने के लिए अक्सर स्वतंत्र इकाइयों (फ्रीलांसिंग प्लेटफॉर्म) का इस्तेमाल करती हैं।

निर्यात क्षमता हासिल करने की रणनीति

कई छोटी कंपनियां ओबीएस का निर्यात तो करती हैं मगर भारत में ज्यादातर अभियांत्रिकी, शोध एवं प्रबंधन पेशेवर इस क्षेत्र में व्यापक संभावनाओं से परिचित नहीं हैं। पर्याप्त एवं उचित समर्थन दिया जाए तो ओबीएस निर्यात करने वाली कंपनियों की संख्या में भारी इजाफा हो सकता है। इस दिशा में पांच-सूत्री योजना फायदेमंद हो सकती है।

नियामकीय समीक्षाः सरकार को ओबीएस क्षेत्र में प्रत्येक विशिष्टीकृत सेवा के लिए स्थानीय नियमों की समीक्षा करनी चाहिए और उन्हें श्रेष्ठ वैश्विक मानकों के अनुरूप करना चाहिए। प्रमाणन नियमः ओबीएस में जरूरी विभिन्न पेशेवर हुनर एवं नियामकीय जानकारियों के लिए वैश्विक बाजार की आवश्यकताओं पर आधारित प्रमाणन मानक लागू किया जाना चाहिए। इससे पेशेवरों को अपने हुनर विश्व-स्तरीय बनाने में मदद मिलेगी।

संघ स्थापित करने की जरूरतः सॉफ्टवेयर एवं आईटी खंडों की तुलना में ओबीएस में सैकड़ों विशिष्ट सेवाएं हैं और इनमें प्रत्येक के लिए अलग हुनर, नियम एवं कारोबारी बाधाएं हैं। इसे देखते हुए बड़ी ओबीएस श्रेणियों के लिए संघ/संगठन स्थापित करने की जरूरत हैं। ये संघ सदस्यों को भारत और दुनिया में नियामकीय चुनौतियों से बाहर निकलने में मदद करेंगे।

दूसरे देशों में अपने समान संघों/संघठनों से सहयोग कर भारतीय संघ खरीदार एवं विक्रेताओं से जुड़ पाएंगे। ये संगठन कितने असरदार रहेंगे, यह उनके नेतृत्व एवं संरचना पर निर्भर करेगा। कई लोग गर्व से यह याद करते हैं कि किस तरह देवांग मेहता की सक्रियता ने 1990 के दशक में भारत के आईटी उद्योग को शुरुआती दौर में मदद पहुंचाई।

व्यापार आंकड़ों का प्रकाशनः भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) लेन-देन के देशवार आंकड़े जारी नहीं करता है। किसी खास ओबीएस पर विस्तृत आंकड़े विभिन्न ओबीएस श्रेणियों में विभिन्न क्षेत्रों के लिए मौजूद संभावनाओं को रेखांकित कर सकते हैं।

व्यापार वार्ताः व्यापार वार्ता के दौरान भारत साझेदार देशों पर दबाव डाल सकता है कि वे अपने बाजारों तक भारतीय कंपनियों के पहुंचने की राह में लगाई गई पाबंदी कम करें। ये प्रतिबंध ज्यादातर डेटा सुक्षा से जुड़ी चिंता, मालिकाना हक की सीमा, राष्ट्रीयता की जरूरत या खास सेवा प्रकारों पर पाबंदी से जुड़े हैं।

भारत में ओबीएस क्षेत्र की वृद्धि न केवल अर्थव्यवस्था को मजबूती देगी बल्कि उद्यमशीलता के उच्च गुणवत्ता वाले अवसर भी लाखों की संख्या में पैदा करेगी। अब ओबीएस खंड की पूर्ण क्षमता का लाभ उठाने के लिए निर्णायक कदम उठाने का समय आ गया है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 30-07-24

नगरों का प्रबंधन न हो जाए जानलेवा

के के पाण्डेय, (प्रोफेसर, शहरी प्रबंधन, आईआईपीए)

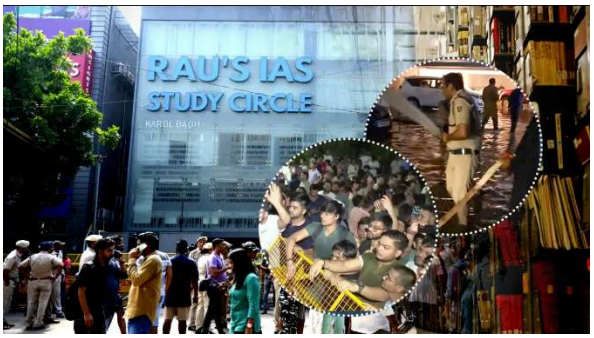

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में एक के बाद एक हो रहे हादसे शहरी नियोजन की गंभीर कमियों की ओर इशारा कर रहे हैं। राजेंद्र नगर की घटना में, जिस पुस्तकालय में अचानक पानी भर जाने से तीन छात्र-छात्राओं की डूबकर मौत हो गई, उसे बेसमेंट में चलाने की अनुमति ही नहीं थी। इसी तरह, बीती 22 जुलाई को मध्य दिल्ली में यूपीएससी की तैयारी कर रहे एक नौजवान की इसलिए मौत हो गई, क्योंकि उसने जल भरे रास्ते से बचने के लिए एक लोहे के गेट को पकड़ लिया था, जिसमें खुले तारों की वजह से करंट दौड़ रहा था। पिछले साल मुखर्जी नगर में एक कोचिंग संस्थान में लगी आग में 60 से अधिक बच्चे घायल हो गए थे, जबकि जहां उनको पढ़ाया जा रहा था, वह स्थान छात्रों की संख्या के हिसाब से काफी छोटा था। साफ है, प्रशासनिक चूक बच्चों के जीवन पर भारी पड़ती दिखी है। इस चूक का खामियाजा महज पीड़ित परिवार नहीं भुगतते, बल्कि राष्ट्र को भी इसकी कीमत चुकानी पड़ती है, क्योंकि किसी भी देश के लिए मानव संसाधन बेशकीमती होता है।

बहरहाल, ऐसे मसलों पर किसी सियासी आरोप-प्रत्यारोप में उलझे बिना हमें यही सुनिश्चित करना है कि इसका उचित समाधान हो। यह तय करना ही होगा कि कोई भी अव्यवस्था किसी की जान पर भारी न पड़े। इसके लिए हमें 'अर्बन रिन्यूअल पॉलिसी', यानी शहरों के नवीनीकरण की नीति बनानी होगी। वास्तव में, आज भीड़भाड़ वाले अनेक क्षेत्र शहरों के मध्य में आ गए हैं, जबकि वहां का बुनियादी ढांचा आज की जरूरत के हिसाब से नहीं है। वहां नियम-कायदों के पालन में भी काफी दिक्कतें पेश आती हैं। लिहाजा, वहां या तो पूरी तरह रद्दोबदल करते हुए नया ढांचा विकसित किया जाए, अन्यथा जरूरत के हिसाब से मौजूदा ढांचे में ही अपेक्षित सुधार किए जाने चाहिए।

ऐसे क्षेत्रों को तकनीकी शब्दावली में 'कोर सिटी एरिया' कहते हैं। इनकी आर्थिक क्षमता काफी अधिक होती है, लेकिन अनियोजित विकास और पुराने बुनियादी ढांचे की वजह से इनकी आबादी की सघनता, क्षमता और जरूरी बुनियादी सुविधाओं में कोई मेल नहीं बैठ पाता। दिल्ली सरकार ने ही पिछले दिनों एक अध्ययन के हवाले से बताया था कि राजधानी में ड्रेनेज सिस्टम को बेहतर बनाने के लिए काफी निवेश की जरूरत है। देखा जाए, तो बारापुला, नजफगढ़ और यमुना पार के इलाके को तीन अलग-अलग भागों में बांटकर जल-निकासी की व्यवस्था में सुधार होना चाहिए। अभी इन तीनों इलाकों की जल-निकासी व्यवस्थाओं में कोई सामंजस्य नहीं है। यहां प्राकृतिक जल-निकासी से आंखें मूंद ली गई हैं।

सवाल उठाए जाते हैं कि इस तरह के व्यवस्थागत बदलाव के लिए पैसे कहां से आएंगे? वास्तव में, हमारे पास पैसों की उस तरह कमी नहीं है, जितनी बताई जाती है। जिस तरह से सरकारें मुफ्त की रेवड़ियां बांटती हैं, उसका अगर एक हिस्सा ही ऐसे ढांचागत कार्यों में नियमित रूप से खर्च किया जाए, तो लोगों को काफी राहत मिल सकती है। मुफ्त की रेवड़ियों का ही असर है कि जनहित सेवाओं के संचालन अथवा प्रबंधन में जिस तरह पैसे खर्च करने की जरूरत होती है, उतना सरकारों के पास नहीं बच पाता और उनको केवल आपात स्थिति के लिए अपनी तैयारी रखनी पड़ती है। राजेंद्र नगर हादसे में ही घटना के बाद तमाम तरह की कमियों की बात सामने आई है। आलम यह है कि जल व्यवस्था को ही दुरुस्त करने के लिए आवश्यक पाइपों की मरम्मत और प्रतिस्थापना का काम नियमित तौर पर नहीं हो रहा, जबकि यह आवश्यक माना जाता है।

शहरी ढांचे की बेहतरी या नवीनीकरण का काम मूलत: नगर निकायों का है, लेकिन संबंधित विभागों में जरूरी समन्वय बन ही नहीं पाता। दिल्ली में ही जल-आपूर्ति का मामला दिल्ली जल बोर्ड के पास है, तो जल-निकासी की व्यवस्था नगर निकाय के हवाले। ऐसे में, जब तक स्थानीय निकायों पर पूरी तरह से समन्वय की जिम्मेदारी नहीं डाली जाएगी, तब तक इस तरह की समस्या बनी रहेगी।

इस मसले का समाधान इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि 2047 तक विकसित देश बनने का लक्ष्य हमने तय कर रखा है। चूंकि योजनागत काम नहीं हो रहा, इसलिए आर्थिक क्षमता से भरे इन क्षेत्रों से हमें उचित फायदा नहीं मिल रहा। हम चाहें, तो मुंबई के धारावी से सबक ले सकते हैं, जहां नवीनीकरण का प्रयास तेज किया गया है। इस तरह के काम हर शहर में क्षेत्रों को चिह्नित करके उचित संदर्भ में किए जा सकते हैं। ऐसा

इसलिए भी करना चाहिए, क्योंकि भारत में मुंबई और दिल्ली महानगर ही आने वाले समय में ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बन जाएंगे। विकसित भारत के सपने को साकार करने के लिए दिल्ली को लंदन, टोक्यो या न्यूयॉर्क से मुकाबला करना होगा और यह तभी संभव है, जब यहां बुनियादी ढांचे पर काम किया जाए। दिल्ली, मुंबई के अलावा बेंगलुरु, हैदराबाद, चेन्नई और कोलकाता भी आर्थिक विकास के दौर में ट्रिलियन डॉलर वाली अर्थव्यवस्था बनने के दावेदार हैं। ऐसे में, शहरों में नीतिगत और ढांचागत बदलाव अपरिहार्य है। मंझले और छोटे शहर राजकीय व अंतरराज्यीय प्रतिस्पद्र्धा से आर्थिक विकास को गति दे सकते हैं।

'अर्बन रिन्यूअल पॉलिसी' के फायदे यूरोपीय देशों में खूब देखे गए हैं। वास्तव में, दुनिया के तमाम देश ऐसी समस्याओं से जूझते रहे हैं, लेकिन वही इससे सफलतापूर्वक निकल पाते हैं, जो इसके लिए पर्याप्त दृढ़ता दिखाते हैं। यूरोपीय देशों ने समयानुकूल अपने यहां ढांचागत बदलाव किए। इसका नतीजा यह है कि आज वहां सघन आबादी वाले अनियोजित क्षेत्र नहीं दिखते। अच्छी बात है कि इस बार केंद्र सरकार ने आम बजट में बिहार, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों पर खास ध्यान दिया है। इससे वहां आधारभूत ढांचे पर निवेश हो सकेगा। अब इन राज्यों की आय बढ़ाने की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए सभी आकार के शहरों का विकास आवश्यक है, 'क्योंकि जवाहरलाल नेहरू नेशनल अर्बन रिन्यूअल मिशन में नवीनीकरण पर ज्यादा काम नहीं हो सका है।

कुल मिलाकर, हमें शहरों के आर्थिक विकास का काम नगर निकायों के हवाले करना होगा। उसे ही यह तय करना चाहिए कि कौन-सा क्षेत्र किस गतिविधि के अनुकूल है और इसके लिए कैसा ढांचागत सुधार किया जाए। इस काम में बड़े और छोटे शहरों की अलग-अलग भूमिका होगी। शीर्ष विभागों को इस प्रक्रिया पर निगरानी रखनी चाहिए और जरूरत के मुताबिक समन्वय करना चाहिए। वास्तव में, नगर निकायों की मजबूती ही नगरीय व्यवस्था को बेहतर बनाती है।